

प्राचीन कोशल का ऐतिहासिक भूगोल एवं पारिस्थितिकी

सारांश

किसी भी क्षेत्र के इतिहास और संस्कृति के अध्ययन में उस क्षेत्र की भौगोलिक संरचना का प्रमुख योगदान होता है। वहां के लोगों की भौतिक और बौद्धिक गतिविधियाँ भी काफी कुछ उसी के अनुरूप निर्धारित होती हैं। कोशल की संस्कृति जिस भौगोलिक पर्यावरण में पुष्पित और पल्लवित हुई, उसे प्राचीनतर काल में 'मध्य देश' कहा जाता था, जिसका विस्तार मुख्यतः गंगा और यमुदा के दोआब में था। कोशल परिक्षेत्र मध्यहिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं, घाटियों, नदियों, प्रपातों, घने, जंगलों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर था। हिमालय की तराई में स्थित होने के कारण घने जंगलों, दलदलों, नदी-नालों तथा हिंसक पशुओं से युक्त इस क्षेत्र में प्राचीन काल में आवागमन दुरुह था, लम्बी यात्रायें प्रायः दिन में होती थीं। यहाँ के भौगोलिक परिवेश ने इस क्षेत्र के लोगों को कठिन परिस्थितियों में जीवन यापन करने के लिये जहाँ एक तरफ समर्थ बनाया, वहीं दूसरी तरफ उन्हें स्वाभिमानी भी बनाया। पर्वतीय शिलाओं तथा जंगली लकड़ियों ने उन्हें आवासीय सुविधायें प्रदान की।¹ ग्राम्य और वन्य जीवन से उनकी कलात्मक अभिरूचि को लोक कला के अभिप्रायों तथा अलंकरणों की ओर केन्द्रित किया।

सपना जायसवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग,
नेता जी सुभाष चन्द्र बोस
राजकीय महिला पी0जी0 कॉलेज,
अलीगंज, लखनऊ

मुख्य शब्द : कोशल परिक्षेत्र, मध्यहिमालय, प्राच्य संस्कृति।

प्रस्तावना

भारतवर्ष का पूर्वी भू-भाग अथवा प्राच्य संस्कृति की भूमि कोशल-केन्द्रित ही कोशल भूमि है। इसके पौराणिक और ऐतिहासिक अभिदान को लक्षित करें, तो अपनी पुरा-वैदिक पृष्ठभूमि में इस अंचल की संस्कृति को नाम दिया जा सकता है-कुश-जन-संस्कृति। इस परिप्रेक्ष्य में ध्यान देने की बात यह है कि उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी बल्कि काफी हद तक आद्यावधि यही माना जाता रहा है कि कोशल क्षेत्र की संस्कृति सप्तसिंधु-क्षेत्र की आर्य संस्कृति के बाद की है यद्यपि प्राच्य-संस्कृति विमर्श की प्रसंग में यह बात पूर्वाग्रहग्रस्त रही है। दृश्य साक्ष्य कहे-समझे जाने वाले 'पुरातत्व' विषय की तो कलागत सीमा है पर शब्द की सत्ता, उसकी सुदूर अतीत कालीन पृष्ठभूमि तथा उसकी प्रशस्त सांस्कृतिक विस्तार सम्बद्ध क्षेत्र के पुरातन इतिवृत्त के जिस चित्र का उद्घाटन करता है, वही है पुरा-वैदिक कुश-जन संस्कृति।²

कोशल केन्द्रिक विवेच्य क्षेत्र के पुरातात्विक आधार की सर्वाधिक बहमूल्य सामग्री ब्रीहि संस्कृति का उद्घाटन करता है। हिमालय की तराई से लेकर मध्य गंगा-घटी तक और अब तक लिये गये पुरातात्विक सर्वेक्षणों एवं उत्खननों से यह प्रमाणित हो चुका है कि ब्रीहि (धान) के प्राचीनतम अवशेष वहीं मिले हैं। प्रसिद्ध पुराविद स्व0 प्रो0 गोवर्धन राय शर्मा के व्याख्यान-ग्रन्थ भारतीय संस्कृति पुरातात्विक आधार (नई दिल्ली, नेशनल, 1935) में इस विषय पर प्रमाणिक विवेचन हुआ है तदनुसार इस क्षेत्र में कार्बन-14 तिथि निर्धारित प्रक्रिया से ज्ञात हुआ है कि धान की खेती का आरम्भ छठवीं-पांचवीं सहस्राब्दी ई0पू0 सिद्ध होती है। इस क्षेत्र के जिन प्रमुख स्थलों से धान के, चावल के दाने प्राप्त हुये हैं, उनके तिथि क्रम सहित नाम है - कोल्डिहवा, महगरा (6000 ई0 पू0), कुनझुन (6000 ई0 पू0), सौहगौरा (2500 ई0 पू0) तथा लहुरादेवा (6000 ई0 पू0) बेलन की घाटी, अदवा एवं सोन की उपत्यकाओं ने नवपाषाण काल के धरातलों से प्रचुर मात्रा में वन्य एवं उत्पादित दोनों प्रकार के धान जो ओरिजा सतीवा (Oriza Sativa) किस्म के हैं, के उत्पादन के उपभोग के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। तीसरी सहस्राब्दी ई0पू0 के मध्य तक विन्ध्य के साथ ही समीपवर्ती गांगेय क्षेत्रों में भी दोनों प्रकार के धान का प्रयोग होने लगा था जैसे चिरांद, सोहगौरा, नरहन और लहुरादेवा में नवपाषाण कालों में धरातलों से दोनों अवस्थाओं, उत्पादित और वन्य धान के प्रमाण मिले हैं।

कोशल के विविधयुगीन, भूगोल परिस्थितिकी तथा आंशिक रूप से भू-आकृति के जो चित्र उभरते हैं उनकी संगति वाल्मीकि 'रामायण'⁴ के वर्णन से पूरे तौर पर ठीक नहीं बैठती। लहुरादेवा के उत्खनन से 6500 ई0 पू0 मानव बस्ती को दो चिन्ह मिले हैं। उससे वहां के लोगों के भौतिक जीवन के अनेक पक्ष प्रकाश में आये। वहाँ धान की खेती होती थी और भूमि का धरातल 3.5मी0 गहरा था। वहां के लोग झोपड़ियों में रहते हुए उगाये हुए और जुटाए हुए प्रकृति जन्य धान, फल-फूल, पशुओं, जल-जीवों और कलान्तर में धान, जौ, गेहूँ आदि के आहार पर जीवत रहते थे। उनके साथ कछुये जैसे जीव भी थे। उत्खनन में 3.25 मी0 नीचे कछुये के खोल मिले हैं। लगभग 2000 ई0पू0 के आसपास यहाँ की आबादी बढ़कर लगभग 500 मी0 में फैल गयी और मिट्टी के बर्तनों तथा ताम्र उपकरणों का प्रयोग बढ़ गया। इस समय के लोग मिट्टी के दीवार उढ़ाते और जमीन की सतह में गड्ढे खोदकर अनाज रखने के लिए 'बखार' बनाते थे। सतह के ऊपर चूल्हों के अलावा जमीन में खुदे चूल्हों का भी प्रयोग करते थे। आस-पास की ताल-तलईया उनके मांसाहारी भोजन का भी एक साधन थी क्योंकि तांबे के उपकरणों में मछली फंसाने वाली कटिया भी मिली है। इसके साथ ही आस-पास के जंगल और उनके जीव-जन्तु उनके जीवन के घनिष्ठ साथी थे। हिरण के सींग, और उस पर कटे के निशान यह बताते हैं कि वे श्रृंग उपकरणों का भी प्रयोग करते थे।⁵

प्रसंगवश, 'महाभारत'⁶ में आये कोशल सम्बन्धित उल्लेखों के बारे में भी कमोवेश यही बात कही जा सकती है। इस सन्दर्भ में पुराण मात्र उसी सीमा तक सहायक है जिस सीमा तक वे अन्य साक्ष्यों द्वारा समर्थित अथवा तर्क की कसौटी पर खरे हैं। बड़े धरातल पर भारत और क्रमशः छोटे धरातल पर मध्यदेश तथा कोशल के भूगोल तथा पारिस्थितिकी के कुछ पहलूओं को उद्घाटित करने से प्रतीत होते हैं।⁷ पौराणिक साक्ष्यों में अन्तर्विरोध और असंगतियां भी हैं। चीनी यात्रियों के विवरण तथा आभिलेखिक साक्ष्य उन साक्ष्यों के साथ अन्तःपरीक्षण के लिए प्रेरित करते हैं।⁸ पुराण विषयक सामग्री के परीक्षण में पार्जिटर, हाजरा तथा अन्य विद्वानों के कार्य आरम्भिक दौर के हैं। बाद के विद्वानों जैसे-रामशरण शर्मा, रोमिला थापर, सुवीरा जायसवाल, ने जिस दृष्टि से पुराणों को देखा है, वह अधिक समसामयिक तथा तर्कसंगत हैं।

बौद्ध एवं जैन साहित्यों के ऐतिहासिक मूल्य को कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। तत्कालीन जनपदों में कोशल और उससे सम्बद्ध कुशीनारा, पावा, पिप्पलीवन, रामग्राम, कपिलवस्तु और काशी के भूगोल, पर्यावरण तथा भौतिक परिदृश्य का ज्ञान इससे होता है जिसकी पुष्टि संस्कृत में रचित बौद्ध ग्रन्थों से भी होती है।⁹ पावा की पहचान आज भी बुद्धकालीन इतिहास की एक जटिल और ज्वलन्त समस्या है। पावा का प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में जैसा वर्णन मिलता है उससे प्रतीत होता है कि पावा तीन भागों में बंटा, एक विस्तृत नगरीय क्षेत्र था जिसकी स्थिति महत्वपूर्ण राजपथ पर थी और जो बौद्ध और जैन दोनों ही धर्मावलम्बियों के लिये समान रूप से श्रद्धेय थी।¹⁰

कोशल सम्बन्धी अन्य विवरण 'अतीतवत्थु'¹¹, 'जातक' 'अट्टकरणसुत्त'¹² तथा धम्मचेतियसुत्त¹³ से मिलते हैं। अंगुत्तरनिकाय¹⁴ भी इस प्रसंग में विशेषतः उल्लेख्य है। संयुक्तनिकाय¹⁵ का एक पूरा सुत्त ही कोशलसुत्त है। संस्कृत बौद्ध 'ग्रन्थ' 'ललितविस्तर'¹⁶ कपिलवस्तु के शाक्यगण की राजनीति और भौगोलिक पृष्ठभूमि का विशद उल्लेख करता है। यद्यपि इसके ऐतिहासिक मूल्य पर सन्देह व्यक्त किया गया है। फिर भी अन्य साक्ष्यों द्वारा पुष्ट होने पर इसकी सूचनायें ग्राह्य हैं। जैन स्रोत विशेषतः 'भगवतीसूत्र'¹⁷ भी इस विषय पर विविध प्रकार की प्रासंगिक सूचनायें देते हैं। कौटिलीय 'अर्थशास्त्र'¹⁸, मनुस्मृति¹⁹, रघुवंश²⁰, महाकाव्य, मेगस्थनीज की 'इण्डिका', फाह्यान और युवान-च्वांग के विवरण भी अनेक तरह की नयी जानकारी देते हैं। जिनका उपयोग जनांकिकीय चित्रण के लिये उपयोगी साक्ष्य है।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी की तुलना में इक्कीसवीं सदी के आरम्भ में कोशल के भौगोलिक परिस्थितिकीय और भू-संरचनात्मक जानकारी के लिये हमारे पास प्रभूत मात्रा में पुरातात्विक स्रोत है। सहेत-महेत (श्रावस्ती), कपिलवस्तु, तिलौराकोट, तौलिहवा, पिपरहवा, लुम्बिनी गनवरिया, लहुरादेवा, सिसवनिया, धरमसिंहवा, अयोध्या, कोपिया, वनरसिया, सौहगौरा, नरहन, ईमलीडीह, खैराडीह, कहांव, खुखुन्दु, भागलपुर, मझौली, रुद्रपुर, दोनबुजुर्ग, कुशीनगर, सठियाँव, फाजिलनगर, वीरभारी, धारमठियाँ, तुर्कपट्टी आदि पुरास्थलों की खोज और उनके उत्खनन से कोशल के भौतिक स्वरूप को अधिक प्रमाणिकता के साथ दर्शाया जाना सम्भव हो गया है। सिद्धार्थनगर, बस्ती, महाराजगंज, गोण्डा, गोरखपुर²¹, कुशीनगर, देवरिया जनपदों को सम्मिलित करते हुए बहराइच से बिहार के गोपालगंज, सिवान और चम्पारन जिलों की सीमा तक, पुरास्थलों की खोज के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा अनेक सर्वेक्षण किये गये हैं। घाघरा, राप्ती दोआब तथा नेपाल की तराई को सम्मिलित कर सरयूपार गण्डक घाटी के गाँवों की आधुनिक पहचान की गयी है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग तथा उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व विभाग द्वारा सर्वेक्षण और उत्खनन कार्य किये गये हैं जिनकी आख्यायें प्रकाशित हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत प्रपत्र का उद्देश्य कोशल परिक्षेत्र की भौगोलिक संरचना एवं पारिस्थितिकी का अध्ययन करना है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि कोशल के भौगोलिक परिवेश एवं पारिस्थितिकी की संरचना इस प्रकार की रही है कि यहाँ मनुष्य और मनुष्येत्तर प्राणियों के भरण-पोषण के लिये प्रचुर प्राकृतिक संसाधन सुलभ रहे हैं। यहाँ कि नदियों की घाटी में कृषि वानिकी उद्यानिकी तथा चराहगाहों के विकास के प्राकृतिक संसाधन सुलभ रहे जिससे इस जनपद में नगरीकरण जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियाँ विकासमान रही हैं किन्तु तराई अंचल की स्थिति थोड़ा भिन्न कही जा सकती है क्योंकि नम जलवायु, दलदली भूमि और बाढ़ ने यहाँ के जनजीवन के समक्ष प्रायः कठिन समस्यायें उपस्थित करती रही है जिसका

प्राचीनतम प्रमाण पांचवी श० ई०पू० के 'सोहगौरा कास्यं फलक' अभिलेख से मिलता है। इस सन्दर्भ में सर्वाधिक चिन्तनीय पहलू यह है कि वनों की कटान और भूगर्भी जल के अत्यधिक दोहन से यहाँ के समाज के लिए भी खतरे की घण्टी बज चुकी है और पर्यावरण बचाओं का नारा बुलन्द होने लगा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. राकेश तिवारी, द०मिथ ऑल डेन्स फारेस्स एण्ड ह्यूमन आकोपेशन इन द गंगा प्लेन, मैन एण्ड एनवारन्टमेन्ट खण्ड 29, अंक 2, 2004
2. राजबली पाण्डेय, गोरखपुर, जनपद गोरखपुर 1946
3. राकेश तिवारी, आर० के० श्रीवास्तव, के० के० सिंह, के० एस० सारस्वत फर्दर एक्सवेशन एट लहुरादेवा, पुरातत्व, अंक 36, 2005-2006
4. रामायण, वाल्मीकि, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
5. राकेश तिवारी, तत्रैव
6. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर
7. विशुद्धानन्द पाठक, हिस्ट्री ऑफ कोशल, 1962 वाराणसी
8. रहज डेविड्स, बुद्धिस्ट, इण्डिया ।
9. भरत सिंह, उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल
10. नन्दूलाल डे, ज्याग्राफिकल, डिक्शनरी, ऑफ एनश्येण्ट एण्ड मेडाइबल इण्डिया ।
11. अतीवबन्धु
12. अट्ठकरणसुत्त
13. धम्मवेतियसुत्त
14. अंगुत्तरनिकाय, आर०मोरिस और हार्डी, लंदन ।
15. संयुक्तनिकाय, महाबोध, सोसाइटी, सारनाथ 1954
16. ललित विस्तर, आर० एल० मिश्रा, विस्ली ओविका, इण्डिया सीरीज 1886
17. भगवतीसूत्र
18. अर्थशास्त्र, आर०शामशास्त्री, मैसूर
19. मनुस्मृति, आर०शामशास्त्री, मैसूर
20. रघुवंश, कालिदास, कालिदास, ग्रन्थावली, वाराणसी
21. दिवाकर प्रसाद तिवारी, गोरखपुर परिक्षेत्र का इतिहास (आरम्भ से 1200 ई तक) 2004